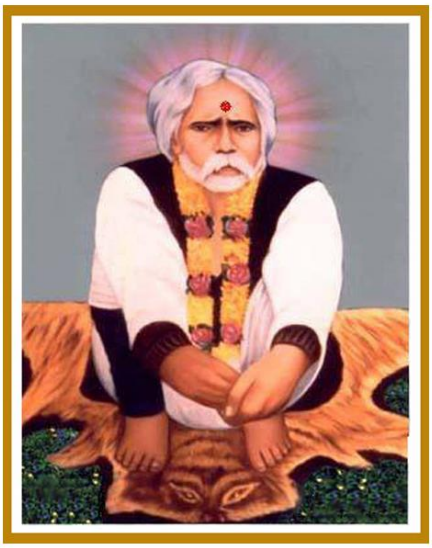

OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

MANOHAR JIVAN DARSHAN

SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT

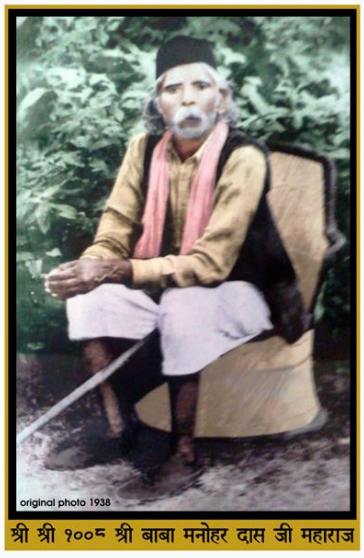

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज

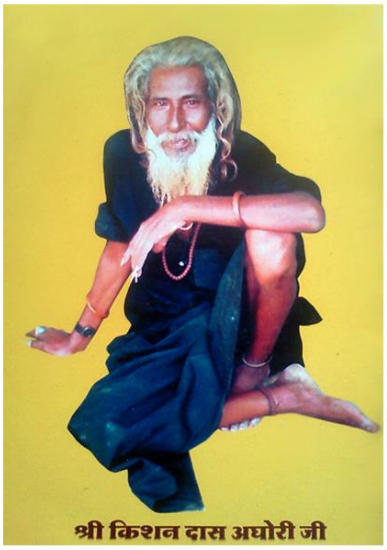
श्री किशन दास अघोरी जी

This book is the cleaning job done on photocopies of an original book,
now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.
Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.

In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.

With love and devotion
Govinda Das Aghori

Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale,
ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.
Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.

In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.

Con amore e devozione
Govinda Das Aghori

प्रकाशक :
एल.पी. शर्मा
अरविन्द प्रकाशन
गली धामाणी मार्केट
चौड़ा रास्ता, जयपुर
फोन : 2320672

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

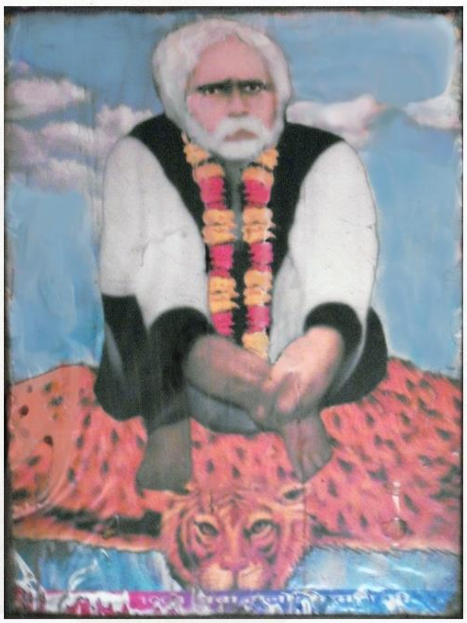

मूल्य : 50.00

नोट : पुस्तक प्राप्त करने हेतु हमें अग्रिम मनीऑर्डर या डी.डी. (ड्राफ्ट) भेज कर लिखिए।

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

मनोहर जीवन दर्शन

लेखक एवं संकलन कर्त्ता :
केदारनाथ शर्मा (खूँट वाले)

[गुरुदेव के चरणों में सादर समर्पित]

जन्म (प्रगटीकरण)	सत्यलोकवास (निर्वाण)
भाद्रपद शुक्ला	अगहन सुदी 6 मगंलवार,
जलझूलनी एकादशी	सुबह 5 बजे
रात्रि 11 वजे पुष्य नक्षत्र में	सम्वत 2015 (16 दिसम्बर, 1958)
सम्वत् 1952 (सन् 1894)	

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्ण मिदं, पूर्णातपूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यत॥

❋❋❋❋

अलख पुरुष की आरसी, सन्तों का ही देह।
लखना चाहे अलख को, इनहीं में लख लेय॥

❋❋❋❋

मेरा तो कुछ भी नहीं,
जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपता
क्या लागत है मोर॥

❋❋❋❋

गुरु मूरत मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।
अष्टप्रहर निरखत रहूँ, श्री गुरु चरनन की ओर॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

श्री गुरुवे नमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरये नमः॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तंयेन सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मैं श्री गुरुवे नमः॥

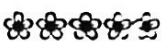

ध्यान मूलं गुरोमूर्ति, पूजामूलं गुरु पदम्।
मंत्रमूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्षमूलं-गुरो कृपा॥

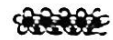

ज्ञान शक्ति समारूढं, तत्व माला विभूषितम्।
भक्ति-मुक्ति प्रदातारं, त्वम गुरुं नौमिसादरम्॥

आत्मज्ञान प्रदानेन, शिष्य संतापहारिणे।
स्वरूपानंदवोध्याय, तस्मैं श्री गुरुवै नमः॥

स्वरूपानंद देवेश, शरणागतवत्सलः।
त्राहिमाम् भो, गुरु श्रेष्ठ त्वामहम शरणंगतः॥

परमाद्वैत विज्ञानं, कृपया योददाति वै।
सो अयं गुरुर्गुरुः, साक्षाच्छिव एव न संसयः॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि, वक्रो अपि चन्द्रः सर्वत्र बन्धते॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्॥

॥ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

नम्रनिवेदन

सर्वप्रथम अपने सिद्धगुरुदेव श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदास एवं ज्ञान गुरु श्री श्री 1008 श्री तुलसीदास जी महाराज के चरण कमलों में सतशः साष्टांगदण्डवत् प्रणाम कर तदोपरांत ''बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन'' पुस्तक लेखन के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। इस पुस्तक के लिखने की आज्ञा सर्वप्रथम महात्मा कुन्दनदास जी महाराज नं जो हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहर दास जी के परम् शिष्य एवं बाबा मनोहरदास जी के मन्दिर एवं ''बाबा मनोहरदास जन हितकारी ट्रस्ट'' के संस्थापक थे, नं दी। बाबा कुन्दनदास ने कहा कि ''छोरा [गुरु] की महिमा कौ कुछ वखान हौनौं चाहिये''। उनका निर्देश बाबा की जीवनी एवं उनकी महिमा पर कुछ साहित्यलेखन की ओर था। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने इसी विचार पर सहमति प्रकट की। हुजूर की महिमा वर्णन की आज्ञा को हमने सादर शिरोधार्य तो कर लिया, लेकिन जब लेखनी उठाई तो मस्तिष्क साथ नहीं दे रहा था कि ''बाबा के सम्बन्ध में लिखा क्या जावे? क्योंकि अन्तः साक्ष्य तो कुछ था ही नहीं बाह्य साक्ष्यों के लिए कुछ ऐसे महानुभाव मेरी दृष्टि में थे जो बाबा मनोहरदास जी महाराज के समकालीन थं, जिन्होंने बाबा के सत्य चरित्रों को नजदीक से देखा था एवं उनकी तनमन से सेदा की थी। मैंने उनके पास वैठकर सांक्षात्कार लिए। विविध प्रश्नों के माध्यम से उनकी स्मृति को जगाकर अनेक प्रकार के संस्मरण सुनाने के लिए तैयार कर लेता। फिर क्या था, उनके मुखों से उनके पुराने संस्मरणों की झड़ी सी लग जाया करती बड़े ही मनोयोग से ''बाबा के जीवन चरित्रों को सुनाने लग जाते और मैं उन्हें लिपिवद्ध कर लेता। इस पुस्तक के ''संस्मरण खण्ड'' के समस्त संस्मरण मैंने इसी प्रकार से प्राप्त कर उन्हें पुस्तक में यथास्थिति संकलित करने का प्रयास किया है।

बहुत प्रयास करने पर भी उनके जीवन वृत्त के बारे में अधिक सामग्री मुझे उपलब्ध नहीं हो सकी। जे भी प्राप्त हुई उसे मैंने अपनी कल्पना शक्ति से विस्तृत रूप प्रदान किया है। पुस्तक का प्रथम खण्ड ''जीवन-दर्शन खण्ड'' है। इसमें उनके जीवन, जन्म समय, जन्न स्थान, परिवार, पुलिस सेवा एवं गुरुदेव की शरण में जाने, जैसे विषयों को संयुक्त करते हुए उनके आध्यात्मिक विचारों का विस्तार से वर्णन किया है। बाबा के जीवन सम्बन्धी जानकारी के श्रोत वे समस्त बुजुर्ग हैं जिन्होंने अपना अमृल्य समय देकर मुझे बाबा मनोहरदास के जीवन से सम्बन्धित सत्य घटनाओं, संस्मरणों को सुनाया। इन्हीं संस्मरणों एवं सत्य घटनाओं को आधार बनाते हुये, मैंने लगभग 18 अध्यायों में बाबा का ''जीवन-दर्शन'' लिखने का प्रयास किया है। बाबा मनोहरदास जी के जीवन-दर्शन खण्ड को मैंने प्रमुख रूप से श्रीमद्भगवद्गीता, उपनियद्, रामचरित्रमानस, श्री मद्भगवत्, साधक संजीवनी, पातंजलि योगदर्शन, विचार चन्द्रोदय आदि ग्रन्थों एवं संत महात्माओं की वाणियों के आलोक से लिखा है।

''बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन'' नामक इस पुस्तक में जिस महापुरुष के जीवन एवं उनके दार्शनिक विचारों को मने लिखने के लिए लेखनी उठाई। यह मेरा दुस्साहस ही है, क्योंकि जिस गूढ़-गम्भीर विषय को लिखने का इस में प्रयास किया गया है, उसका मैं अपने आपको अधिकारी नहीं मानता, यह सब कुछ ''गुरुदेव'' की प्रेरणा तथा बाबा के समकालीन सेवकों, भक्तों द्वारा सुनाये गये संस्मरणों, से ही सम्भव हो सका है। पुस्तक का तीसरा खण्ड बाबा महाराज के उत्तराधिकारियों तथा प्रमुख शिष्यों के जीवन वृत्त की संक्षिप्त जानकारी देने के उद्देश्य से लिखा गया है जो कि सत्य घटनाओं के संस्मरणों पर ही आधारित है और कुछ अपनी स्मृति के आधार पर भी लिखा गया है। इसी खण्ड में कुछ संक्षिप्त जानकारी ''श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज जनहितकारी ट्रस्ट'' के निर्माण, एवं वर्तमान व्यवस्था से सम्बन्धित भी दी गई है।

परम श्रद्धेय श्री श्री 1008 बाबा श्री मनोहरदासजी के जीवन एवं उनके दर्शन को बताने वाले ग्रंथ का प्रायः अभाव था, जिससे वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को उनकी महिमा का ज्ञान हो सके। अतः प्रस्तुत पुस्तक ''बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन'' के माध्यम से उनके अलौकिक, चरित्रों एवं उनकी महिमा को जनसाधारण तक पहुँचाना इस पुस्तक को लिखने का मुख्य उद्देश्य रहा है। ''बाबा'' के बारे में जानकारी लेने वाले साधकों, भक्तों एवं जनसाधारण के लिए चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों। यह पुस्तक उपयोगी एवं ज्ञानवर्धन सिद्ध होगी। ''बाबा'' की भक्ति करने वाले सभी भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि इस पुस्तक के अध्ययन करने एवं सुनने मात्र से उन्हें बाबा के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास में वृद्धि होगी।

पुस्तक में त्रुटियाँ रहनी स्वाभाविक हैं, अतः इसमें जो भी त्रुटियाँ रही हों, उनके लिए विज्ञजन क्षमा करें और मुझे सूचित करने की कृपा करें। पाठक गणों को मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि न तो मैं विद्वान हूँ और न ही अनुभवी लेखक। एक परम संत की जीवनी एवं उनके दर्शन (आध्यात्मिक विचारों) जैसे गुरु गम्भीर विषय पर कुछ लिखना मेरे जैसे अल्पबुद्धि एवं अल्पज्ञ के लिए अनाधिकार चेष्टा ही है। लेकिन बाबा कुन्दन दास की आज्ञा एवं अपने आनन्द मण्डल के मित्रों एवं सहयोगियों के आग्रह पर जैसा हरि प्रेरणा एवं गुरु कृपा से समझ में आया वैसा लिखने का साहस किया है।

विनीत
केदार नाथ शर्मा (खूँट वाले)
लघुकाशी वैर, जिला-भरतपुर
(राजस्थान)

ॐ श्री गुरुपरमात्मेन नमः

(बाबा मनोहरदास-जीवन दर्शन)

मनोहर-महिमा

[इस भोग प्रधान संसार को "बाबा" ने अपने तप-त्याग के द्वारा यह उपदेश दिया कि यह मनुष्य जन्म भोगों के लिए नहीं अपितु आत्म कल्याण के लिए मिला है। उन्होंने संसार को अन्न जल छोड़ निर्जन वनों में जाकर कठोर तप कर सर्वथा संसार से पलायन का मार्ग नहीं बतलाया। उन्होंने संसार को यथार्थ तप एवं सच्चे त्याग का उपदेश देते हुए कहा कि अपने स्थान पर रहते हुए मध्यम मार्ग पर चलते रहने से ही उस परम् सत्य की प्राप्ति होती है।]

[जैसे एक देश (स्थान) स्थित पुष्प राशि, के सौरभ से वायु द्वारा सम्पूर्ण वन प्रान्त सुरभिव वना दिया जाता है तथा सभी दिशाएँ उसी से सुवासित हो जाती हैं। उसी प्रकार महात्मा मनोहरदास जी महाराज ने अपने तप-त्याग के प्रभाव से अपनी जन्म स्थले एवं तपोस्थली वैर लघुकाशी को ही नहीं अपितु यहाँ से दूर-दूर तक ज्ञानालोक एवं सुयश फैला दिया था।]

संसार का द्रत्येक प्राणी पदार्थ कालाधीन है।

इस चराचर जगत में हर प्राणी पदार्थ का कम या अधिक अवधि में अन्ततः विनाश हो ही जाता है इसलिए इस संसार को विनाश शील कहते हैं। "कालो हि दुरति क्रमः "उक्ति के अनुसार कोई भी काल से कवलित हुए बिना नहीं रह सकता। स्वयं जग निर्माता ब्रह्मा से लेकर सामान्य चींटी तक सभी कालक्रम से नियमित हैं अतः इस भौतिक संसारी देहदि के क्षण मंगुर सुख में वे मोहित नहीं हुए।

स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि, "जो व्यक्ति सत्य को न जानकर अबोध की भाँति सन्सारिक भोग विलास में निमग्न हो जाता है उसके लिए यह समझो कि उसको ठीक मार्ग नहीं मिल सका, उसका पाँव फिसल गया है। दूसरी ओर जो व्यक्ति संसार को कोसता हुआ वन में चला जाता है, अपने शरीर को कष्ट देता है, उसे धीरे-धीरे सुखा कर मार डालता है अपने हृदय को शुष्क मरुभूमि बना देता है, अपने सभी भावों को कुचल देता है कठोर, वीभत्स व रूखा बन जाता है। उसके बारे में भी यह समझ लो कि वह मार्ग भूल गया है, राह भटक गया है। ये दोनों दो छोर की बातें हैं दोनों ही भ्रम में हैं एक इस ओर दूसय उस ओर। दोनों ही पथ भ्रष्ट हैं। दोनों ही लक्ष्य भ्रष्ट है।" (ज्ञान योग से, स्वामी विवेकानन्द)।

"बाबा" ने संसार को जो मार्ग दिखलाया उसमें मनुष्य के अपने वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, देश और वेश में कोई परिवर्तन न करने की आवश्यकता ही नहीं वरन् गीतोक्त मार्ग पर चलकर प्राणीमात्र का हित करते हुए अपने-अपने कर्तव्य कर्म का सच्चाई से

समाज को योग का मध्यम-मार्ग दिखलाया जिससे वे भोगाग्नि में अपने अमूल्य मानव जन्म की आहूति न देकर सत्य को हृदयंगम् करके एवं जीवन की नश्वरता को समझकर समाज एवं लोक कल्याण में उसे लगाएँ और अपने जीवन को सफल बनाएँ। संसार को मोक्ष का सबसे सरल मार्ग बतलाने के लिए वह एक छंद बोला करते थे–

मोक्ष मुक्ति जो चहत हौ, तजौ कामना काम।
मन इच्छा को मेटि कर, भजौ निरंजन नाम॥
भजौ निरंजन नाम, देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तज स्वाद, आप में आप समाओ॥
जब छूटै झूँठी देह, जैसे के तैसे रहिया।
''चरनदास'' यह ज्ञान गुरु ने हम से कहिया॥

इस छंद में वेदान्त का सार-निहित है ''मन की इच्छा को समाप्त कर ईश्वर का जो नाम जपता है तथा मैं देह हूँ। ऐसे मिथ्या भ्रम से जो मुक्त हो जाता है, इन्द्रियों के स्वादों को तज कर जो आपे में समा जाता है, मिथ्या शरीर के छूटने पर आप स्वयं वैसा का वैसा अनुभव करता है वही सच्चा आत्मवेन्ता होता है।'' बाबा महाराज ने अपने तप, त्याग एवं साधना से आत्मनिष्ठा को प्राप्त किया था वे आज भी हमें अपने ज्ञानालोक से राह दिखला रहे हैं। उन्होंने अपने तप त्याग एवं आध्यात्मिक साधना के आलोक को चहुदिश फैलाया। यह लघुकाशी पूण्य भूमि वैर प्राचीन समय से ही संगीत, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में विख्यात रही है। यहाँ आचार्य सोमनाथ जो महाकवि सूदन के अनुज बताए जाते हैं जैसे, कवि डाँ, रांगेय राघव जैसे साहित्यकार एवं पं, लच्छीराम जी जैसे महान संगीतकारों की कर्मस्थली रही है, इसी भूमि पर लाला लच्छीराम जैसे वैद्यराज हरनारायण जैसे कविश्वर तथा पं, रामचरण चौधरी जैसे भीमकाय पहलवानों ने जन्म लिया था। यहाँ पर प्रताप दुर्ग श्वेत एवं लाल महलों, विविध देवालयों से संयुक्त आकर्षक फुलवारी के खंडहर आज भी इसके गौरवशाली अतीत की स्मृति दिखाते हैं। यह भूमि संगीत, साहित्य एवं कला की दृष्टि से ही नहीं यहाँ पर आध्यात्म, दर्शन एवं विविध सम्प्रदायों यथा शैव, वैष्णव, जैन, एवं शाक्तों द्वारा शान्तिपूर्वक अपनी-अपनी साधना पद्धतियों के माध्यम से आत्म शान्ति लाभ कमाते रहे हैं।

ऐसे ही परम-पावन परिवेश में परमात्मा की साधना में लीन होकर हमारे ''बाबा'' मनोहरदास ने आध्यात्म के क्षेत्र में एक ऐसी मिसाल कायम की जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके दिखाए मार्ग पर चलकर मानव समुदाय चाहे वह किसी वर्ण, जाति एवं सम्प्रदाय से सम्बन्धित क्यों न हो, युगों-युगों तक आत्मकल्याण एवं शान्ति का आलोक प्राप्त करता रहेगा। उनके उपदेश सीधे, सरल एवं व्यावहारिक थे लोगों को उन्होंने बड़ी ही सीधी-साधी साधना पद्धति और साधु संगत का लाभ समझाया–

दीनताई दया अरु नम्रताई दुनियां बीच।
वन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा॥
चार बीसी-चारि से, वचेगा तू मेरे यार।
साधुओं की संगत से तू बड़ा सुख पाएगा॥

(बाबा की वाणी)

अपने में दीनता एवं नम्रता धारण करके दुनिया में रहना, दीन-हीनों भूखे-प्यासों की यथा शक्ति मदद करना तथा नित्य नियम पूर्वक सदैव भगवद् भजन अर्थात् बंदगी में लगे रहने वाला चौरासीलाख के चक्र से मुक्त होकर परम् शान्ति को प्राप्त होगा इसमें कोई संदेह नहीं है। साधु संगत में तू अनिर्वचनीय आनंद की प्राप्ति करेगा। यह उपदेश उनका मानव समुदाय के लिए था। आगे के 18 अध्यायों में उनके जीवन एवं दर्शन से संबंधित विस्तृत वर्णन सादर प्रस्तुत है।

–लेखक

जीवन एवं दर्शन खण्ड

अध्याय 1

''औम श्री गुरु परमात्मने नमः''

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

प्रारम्भिक जीवन

तप, त्याग और वीरता के लिए प्रसिद्ध राजस्थान प्रान्त के पूर्व स्थित भरतपुर (लोहगढ़) जिले में ''लघुकाशी'' के नाम से विख्यात करया वैर में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में सं. 1952 (सन् 1894) भाद्रपद शुक्ला जलझूलनी एकादशी के दिन रात्रि के 11 बजे पुष्य नक्षत्र नें पं. श्री भजन लाल नगाइच के घर एक बालक का जन्म हुआ। पं. भजन लाल एक दिद्वान और सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति थे। जिनका घर प्रताप गंगा के उत्तरी तट पर नीम एवं दीपल के विशाल वृक्षों के बीच स्थित था। बालक का बचपन का नाम ''मूला'' रखा गया जिन्होंने आगे चलकर लघु काशी वैर को अपने तप, त्याग एवं भक्ति से गौरवान्वित किया और ''संत शिरोमणि बाबा मनोहरदास'' के नाम से विख्यात हुए।

बचपन से ही वे शान्त एवं गम्भीर स्वभाव वे थे। छोटे-बड़े सब के साथ हंसकर बोलना, किसी पर क्रोध न करना, सबकी सेवा में तत्पर रहना, हँसी मजाक से दूर रहन, एकांत में बैठकर घंटों विचारमग्न रहना ये सब उनके स्वाभाविक गुण थे। इनके पिताश्री ने इनकी शिक्षा दीक्षा की समुचित व्यवस्था की तथा स्वयं भी उनके लिए विविध विषर्चो का अध्यापन कराते थे। जैसा कि पूर्व में बताया गया है वैर जो कि ''लघु काशी'' के दान से विख्यात है, उस समय यहाँ पर अनेकों विद्वानों, महापण्डितों का शास्त्रार्थ चलता रहा करता था। आध्यात्म के विविध गूढ़तम प्रश्नों पर विचार-विमर्श होते रहा करते थे। ''श्री सीताराम जी महाराज'' के मन्दिर के आचार्य स्वामी श्री रंगाचार्य का नाम उन दिनों भारत के मूर्धन्य विद्वानों में गिना जाता था। ''कब तक पुकारुं'', मुर्दों का टीला, यई पर्वत तथा ''महामाया'' जैसे उपन्यासों और अनेकों कहानियों तथा सैकड़ों की तादाद में ग्रन्यो के रचनाकार स्वनाम धन्य श्री रांगेय राघव जैसे हिन्दी के महान साहित्यकार इन्हीं स्वानी रंगाचार्य जी के पुत्र थे। वैर का परिवेश उन दिनों साहित्य, संगीत एवं कला की दृष्टि से अपने पूर्ण यौवन पर था। ऐसे ही परिवेश में बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज की प्रारम्भिक शिक्षा- दीक्षा सम्पन्न हुई। आपको संस्कृत साहित्य ने अधिक प्रभटित किया उन्होंने अन्य सब विषयों से ध्यान हटाकर उपनिषद् और श्री मद्भगवद्गीता पर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया। वे हमेशा ब्रह्म विद्या के विचार में लीन रहा करते थे। गीता का प्रभाव उनके आध्यात्मिक दर्शन पर अन्त तक देखा गया। पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ वे ''विज्ञान'' सम्पन्न हो चले थे। वेद शास्त्रों के अध्ययन से ईश्वर के बारे में प्राप्त अपरोक्ष ज्ञान को स्वानुभूति के द्वारा आत्म साक्षात्कार कर लेना ''विज्ञान'' कहलाता है। दचपन से ही इनकी सूक्ष्मदृष्टि आत्मज्ञान प्राप्ति में सहायक रही। एक ब्राह्मण में जो गुण सेने वाहिये उन सभी का इनमें पूर्ण विकास हो चला था।

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ (गी./18/42)

अर्थात् अन्तःकरण का निग्रह करना, (दमः) इन्द्रियों का दमन करना, (तपः) स्वधर्म के लिए कष्ट सहना, (शौच) बाहर भीतर की शुद्धि, (क्षान्ति) क्षमाभाव, (आर्जवम्) मन, इन्द्रियों एवं शरीर की सरलता, (ज्ञानं) शास्त्र विषयक ज्ञान, (विज्ञान) परमात्मतत्व का अनुभव तथा (आस्तिक्यं) आस्तिक बुद्धि ये नौ गुण जो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं इनमें पूर्ण रूपेण विकसित हो गए थे।

यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इनके ऊपर माता का ममता भरा साया छोटी उम्र में ही उठ गया था। असमय में माता की मृत्यु ने इनके हृदय पर वज्रणत किया। तब से ही इनके हृदय में इस संसार की असारता के अंकुर प्रस्फुटित हो जए थे। आपका ध्यान शिक्षा-दीक्षा से हटकर इस असार संसार एवं इसकी अनित्यता पर विचार करने में लग गया। जैसे वायु का तीव्र वेग नौका के मुख को फेर देता है, जैसे विशाल चट्टान से टक्कर खाकर नदी ,का बहाव बदल जाता, ठीक ऐसे ही इस अदृष्टपूर्ण घटना को देखकर ''मूला'' की चिन्तवृत्तियाँ अपने जीवन प्रवाह को क्रमशः बदलने लगी। विद्युतपात से कम्पित मनुष्य की भाँति भयभीत ये सोचने लगे, अहा! मेरी माता की भाँति सभी लोग एक-एक करके अवश्यमेव विकराल काल के गाल में चले जाएंगे। निश्चय ही मुझे भी उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा। मृत्यु ऐसी अवश्यम्भावी है कि इससे छोटा-बड़ा, राजा या रंक कोई भी नहीं बच सकता। मृत्यु सरिता के इस घाट पर सभी को उतरना ही होगा।

दाने बीन चबाने वाले इसी घाट पर आए।

गगन ध्वजा लहराने वाले इसी घाट पर आए॥

अपने सुहृद सम्बन्धियों की असहाय विरह वेदना सभी को सहन करनी होती है। वह दुःर्दिन जीव मात्र को देखना होता है। सचमुच यह जीवन क्षण भंगुर है, जलदुद्वत् चंचल है, संध्या रागवत् अस्थिर है, पलास पत्र पर पड़े- ओस कण की भाँति चलायमान है। इनकी माता की मृत्यु क्या हुई, इनके मन मस्तिष्क में वैराग्य के विचारों का प्रवाह ही उमड़ पड़ा, जिसने इनके जीवन पथ की दिशा ही मोड़ दी। रात-दिन ये इस जीवन की असारता और क्षणभंगुरता के बारे में चिन्तन करते रहते और सोचते कि ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे जन्म मरण रूपी इस दारुण दुःख से छुटकारा पाया जा सके और मुक्ति का लाभ हो, अमर जीवन की उपलब्धि हो।

दोहा– *ये तन काचा कुम्भ है, लिए फिरै था साथ।*

ढवका लागा फुटि गया, कछु न आया हाथ॥

माता के मरणोपरांत ये उनके वियोग से उबरे भी न थे कि विधि का विधान कठिन प्रारब्ध भोग, घात के पश्चात् प्रतिघात एकमात्र सहारा इनके पिता भी इन्हें

इस संसार में सर्वथा अकेला-छोड़कर परमधाम सिधार गए। प्रारब्ध के बलवान भोग से कौन बच सकता है और जो होनहार होती है वह होके ही रहती है–

दोहा– *तुलसी जसि भवतव्यता, तैसी मिलै सहाय।*

आपुन आवई ताहि पहिं, ताहि तहाँ लै जाइ॥

अब इनके परिवार में कोई न था "एकमात्र पिता" जिनका इन्हें बड़ा सम्बल था। धीरे-धीरे मातृ-शोक से उबर रहे थे कि अब रही सही कसर भी पूरी हो गई। अपने एकमात्र प्रेमपात्र पिता की अचानक मृत्यु को देखकर उनकी आँखों से आँसू टप-टप करके गिर पड़े। उनकी ये दशा लोगों से देखी न गई। लोग करुण-कुन्दन करते हुए फूट-फूट कर रोने लगे। बालक "मूला" का धैर्य टूट गया अब वे बेसहारा थे। रोते-रोते उनकी आँखें सूज गईं। उन्होंने अपने गत सारे जीवन में इतना रोदन कभी न किया था। यह दूसरी घटना उनके जीवन में वैराग्य दावानल के संग-पवन का प्रसंग था। उनकी सम्वेग नदी का वेग बढ़ाने में महामेघ का वर्षण था, उनके विरक्ति हवन कुण्ड में घृत धारा का पात था। अब ये पूर्ण विरक्त हो गए, ऐसे कठिन समय में श्रीमद्भगवद् गीता ज्ञान का अपार सम्बल इन्हें मिला संसार की असारता एवं क्षण भंगुरता का इन्हें पक्का ज्ञान जो पहले पुस्तकीय था अब माता-पिता की मृत्यु ने उसे व्यवहारिक कर पुष्ट कर दिया उन्हें भगवान के वचन-याद आए कि–

"अनित्यमसुखं लोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम्"॥

अर्थात् "यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान और सुख-रहित, इसलिए काल का भरोसा न करके तथा अज्ञान से सुख रूप भासने वाले विषय भोगों में न फंसकर, निरंतर मेरा भजन कर"।

श्रीमद्भागवत गीता ज्ञान प्रकाश ने इनके हृदयचक्षु खोल दिये इनकी समझ में इस मृत्यु-लोक की असत् सत्ता का रहस्य अब पूर्ण रूपेण आ चुका था। उन्होंने देखा कि ये सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच मिथ्या है। यहाँ रचाई कुछ भी नहीं प्रारब्धाधीन सम्पूर्ण जीव जगत काल के गाल मे समाता जा रहा है, यह मेरी देह भी मरण धरमा है। ऐसा मन में विचार कर अमरपद प्राप्ति का और जीवन्मुक्त होने का उपाय सोचने लगे। मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि सदैव यथावत रहे, सभी को यहाँ से चले जना है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है जैसे-सूर्य उदय होकर अन्त में अस्त हो जाता है, कुछ समय के लिए फूल-खिलकर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार हर चीज का आदि अंत है।

जो उग्या सो आंथवै, फूला सो कुम्हलाय।
जो चिणियाँ सो डहिपरै, जो आया सो जाय॥

महात्मा बुद्ध के जीवन में भी एक मृतक को देखकर परन वैराग्य का उदय हो गया था। तथागत जब बालक ही थे तो जयोतिषाचार्यो वे उनके पिता को यह

बतलाया कि "यह बालक या तो एक महान राजा होगा अथवा एक परम् वैराग्यवान संत"। विद्वानों की भविष्य वाणी ने उनके पिता को चिंतित कर दिया वे सोचने लगे कि बहुत प्रतीक्षा से प्राप्त पुत्र कहीं सन्यासी न हो जाए। उन्होंने तथागत गौतम की प्रारम्भिक व्यवस्था बहुत ही आकर्षक महल में की। उन्हें वैराग्य पैदा करने वाले दृश्यों से बचाया गया। रोगी, बुढ़ापा तथा मृत्यु के दृश्यों से उनको दूर रखा गया। उनके सेवकों एवं सेविकाओं में सभी सुन्दर एवं मनोहारी नवयुवक एवं नवयुवतियों को नियुक्त किया गया उनके प्रासाद के चारों ओर किसी भी प्रकार की चीख-पुकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध रखा गया। यहाँ तक कि उनके बगीचे में से सूखे पत्तों को भी हटाकर दूर कर दिया जाता था। उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव नहीं था। इन्हें मौत की छाया से दूर रखने के हर सम्भव प्रयास किये गए। लेकिन विधि का विधान, वे न रोक सके। जो सर्वव्यापी है उसे कब तक छुपाया जा सकता है। एक दिन गौतम बुद्ध अपने मित्र से बोले "आनन्द! यह संसार कितना सुन्दर है मेरी यशोधरा, मेरा पुत्र राहुल ये कैसे सुन्दर हैं, हमारा जीवन कितना सुखी है। क्या यह संसार इतना ही है?" आनन्द बोला– "राजकुमार यह संसार दहुत बड़ा है" आप तो एक क्षेत्र विशेष में ही निवास करते हैं।

"मैं यहाँ से बाहर का संसार देखना चाहता हूँ चलो रथ तैयार करो।" लेकिन आनन्द बोला–

"राजा साहब की आज्ञा आपको यहीं रहने की है।" राजकुमार गौतम ने कहा कि "क्या इस राज प्रासाद में मुझे बाँध कर रखा गया है? क्या मुझे बाहरी स्वतंत्रता नहीं और क्या तुम मेरे आदेश की पालना नहीं करोगे।" आनन्द विवश था, उसने रथ में राजकुमार को बिठा कर बाहरी दुनिया दिखाने की आज्ञा स्वीकार कर वैसा ही किया। रथ राजमार्ग पर ज्यों ही आगे बढ़ा तो उन्हें एक रोगी दिखाई दिया उस व्यक्ति के शरीर में व्याधि ने सारा रक्त सुखा कर पंजर मात्र कर दिया था। उसकी आकृति भयानक एवं डरावनी लगती थी। तथागत ने अपना रथ रुकवाया पूछा। "आनन्द! यह क्या है?" उत्तर मिला- "राजकुमार! यह व्याधि ग्रस्त मानव है, व्याधि के प्रकोप से यह व्याकुल हो रहा है।" राजकुमार उसे देखकर चिन्ता मग्न हो गया। उसने अपने मित्र आनन्द से पूछा यह ऐसा क्यों है? क्या कभी ये व्याधि मुझे और मेरी यशोधरा को भी हो सकती है? "क्यों नहीं?" "प्रारब्ध का भोग तो सब काहू को होय।" सारा संसार इसके प्रभाव में आता है व्याधि राजा या रंक को नहीं देखती।" ऐसा सुनते ही राजकुमार अपनी कल्पनाओं में व्याधिग्रस्त हो गया उसे अपनी यशोधरा भी उसी रूप में दिखाई देने लगी, वह दुःखी हो गया। रथ आगे बढ़ा तो रास्ते में एक बूढ़ा आदमी जिसकी कमर झुकी हुई थी, आँखें गड्ढे में धस रही थी, उसका एक-एक अंग जराजीर्ण हो गया था। उसकी एक अजीव आकृति देखकर राजकुमार ने पूर्ववत प्रश्न कर पूछा- "आनन्द देखो। वह क्या है?" आनन्द ने कहा- "राजकुमार यह भी कभी तुम्हारे जैसा सुन्दर नवयुवक था।

प्रकृति का विधान है कि प्रत्येक जीव जो पैदा हुआ वह बालक युवा अवस्थाओं को पार कर गया और जीवित रहा तो ठीक ऐसा ही हो जाता है। यह ''जरा'' (बुढ़ापा) प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की ही एक अवस्था है। आप और आपकी यशोधरा अगर पूर्णवयस्क होकर आगे जीवित रहे तो ठीक ऐसे ही हो जाएंगे।''

तथागत गौतम के कल्पनामात्र से रोंगटे खड़े हो गए उनके सुन्दर स्वर्णिम संसार की असारता का रहस्योद्घाटन हो रहा था। अपनी कल्पना में गौतम बूढ़ा हो गया। रथ आगे बढ़ाया गया तो कुछ लोग एक ठठरी को कन्धे पर उठाए हुए श्मशान की ओर जा रहे थे। गौतम ने पूछा- आनन्द! ये लोग क्या ढ़ककर ले जा रहे हैं? गौतम को उसके मित्र आनन्द ने मृत्यु का रहस्य समझाया कि प्रत्येक प्राणी, पदार्थ जो जन्म लेता है, उसका यह अन्तिम परिणाम है। अर्थात् जन्म, युवा, बुढ़ापा और उसके पश्चात् मृत्यु अवश्यम्भावी है। इनसे आज तक न कोई बचा है और न ही भविष्य में कोई बचेगा। आनन्द की वात सुनकर गौतम बुद्ध अपनी कल्पनाओं में मर गया उसका सारा सुखमई संसार मर गया। उसके पिता ने जिस जरा, व्याधि और मृत्यु के दर्शन से उसे बचा रखा था और उसे मौत की छाया से बचाना चाहा था, लेकिन जो व्याप्त है उससे कोई कहाँ तक वचेगा। आज उसकी समझ में मृत्यु का रहस्य आ चुका था। उसके हृदय में वैराग्य का अंकुर फूट चुका था, वह जरा, व्याधि से ग्रस्त होकर मर चुका था- उसे इस संसार की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति की असारता और क्षण भंगुरता का रहस्य ज्ञात हो गया। उसके सुखमय संसार का आज नाश हो चुका था। अब वे दुःखों के नाश एवं अमर जीवन की खोज के लिए सब कुछ छोड़कर निकल जाना चाहते थे। उन्होंने कहा- ''आनन्द! बस करो, मैंने वास्तविकता के दर्शन कर लिए हैं, मुझे धोखे में रखा गया अब मुझे वापिस ले चलो। उनके हृदय में परम वैराग्य का उदय हो चुका था। ठीक इसी प्रकार अपने पिता-माता के असमय (उनसे) विछोह ने ''मूला'' को बुरी तरह झकझोर दिया। उन्हें सारा संसार सूना-सूना सा दिखाई दिया। अब वे दिन रात विचार मग्न रहा करते कि इस मृत्यु व्याधि के नाश की औषधि कहाँ मिलेगी? अमर जीवन के लिए कौन-सा उपाय करना चाहिए? मुक्ति मार्ग में किस का भरोसा किया जाये?'' अन्त में उन्होंने यह पक्की धारणा बना ली कि मुक्ति प्राप्त करके ही रहूँगा और मृत्यु के मुख से छुटकारा पाकर ही रहूँगा। महात्मा बुद्धि के जीवन प्रसंग से हमने देखा कि महापुरुषों के जीवन में प्रायः इस प्रकार की घटनाएँ हुआ करती है जो उनके भविष्य निर्माण के लिए उत्तरदायी हुआ करती हैं। महात्मा तुलसीदास जी के बचपन में भी उनके सिर से माता-पिता की छत्रछाया हट गई थी। लेकिन जो प्रारब्ध को मंजूर था वही हुआ। आज इतिहास में वे अमर हो गए। ठीक यही संसार के अन्य महापुरुषों के जीवन वृत्तो को पढ़ने से जानकारी होती है कि प्रायः बड़े-बड़े संकटों से गुजरना पड़ा था महात्मा मनोहरदास जी के बचपन की इस हृदय विदारक घटना के पश्चात पाँच-दस दिन तक सहानुभूति रखने वाले लोग उन्हें ढ़ाढ़स बंधाने आते रहे लेकिन अन्त में वे अकेले थे। उनके परिवार सें अब उनके अलावा कोई न

था । उन्के पिता के समय जा उन्के पस जाय जाय करते, अब वे सब उन्का साथ छोइ गये । किसी मे ठीक ही कह है कि जब तक "बनी" होती तब तक सबी साथ देते है और जब "बनी" विगडती है तय अपना साया भी साथ छोड़ने लगता है |

"पते भि हर सजर के, साथी बहार तक हैं,
तिपटी रहेजी दुनियाम्, जय तक "बनी" रहेगी"॥

संसार की गति देखकर उनके मन मस्तिष्क में इसके प्रति वैराग्य हो चला। धीरे-धीरे अष अपने माता-पिता के शोक रो मुक्त होकर यह निर्लिप्त बवा से रहने लगे । अपने आध्यात्मिक चिन्तन में मग्न रहते । किसी मे उनके उस दु:खी जीवन में उन्का साथ् नहीं दिया । मातृ-पितृ विहीन अब ईश्वर की जीव का और उन्का झुकाव बढे लगा । उन्हें लगा कि यह संसार किसी का नहीं एक ईश्वर ही जीव का सधा सखा है । दु:खी जीवन ही जागरण काल होता है । जैसे बोध मनुष्य का पीड़ा के पश्चात् होता है, वैसा सामान्य जीवन में नहीं आज उनके हृदय में संसार के प्रति वैराग्य हो चला था । लोकिन यह उनका दृड़ वैराग्य न होकर आपात वैराग्य था जो माता और पिता की मृत्यु के कारण उत्पत्र हुआ था । शात्रों में वैराग्य के अनेक रूप बतलाए गए है यथ- पुराण वैराग्य, श्मशान वैराग्य, मर्कटयैराग्य आदि ये सभी आपात वैराग्य हैं । आपात वैराग्य का अर्थ है जो कुछ समय के लिए रहे और कुछ समय पश्चात्, न रहे वह आपात वैराग्य होता है । यह चार स्थानों पर मुख्य रूप से उत्पत्र होता है ।

चार ठौर सब नरन कें, कुछ वैराग्य चढंत ।
गर्भ-माहि शव के निकट कया-सुनत रति अन्त ॥

अर्थत् मनुष्यों को चार स्थानों पर कुछ वैराग्य देखा जाता है प्रथम जब जीव गर्भ में होता है तो उसे बहुत ही कष्ट झेलने होता हैं । माता के पेट में सिर नीचे पैर ऊपर रहते हैं और इस भयानक संकट के समय कोई बात भी नहीं पूछता रक्त, मल-मूत्र, विष्टा कीडे और कीच से घिरा हुआ जब यह गर्भ में पड़ा होता है, कोमल शरीर में जब भारी वेटना होती है तो यह सिर धुन-धुन कर रोता है । वहाँ इसे वैराग्य का उदय होता है । महात्मा तुलसीदास् जी ने अपनी विनय-पत्रिका में यह वर्णन इस प्रकार किया जया है -

तैं निज करम-डोरि दृढ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ताते परबस परयो अभागे। ता फल गरभ-बास-दु:ख आगे॥
आगे अनेक समूह ससृति उदरगत जान्यो सोउ।
सिर हेठ, ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछे कोउ॥
सोनित-पुरीस जो मूत्र-मल, कृमि-कर्दमावृत सोवई।
कोमल सरीर, गम्भीर वेदन, सीस धुनि-धुनि रोवई॥

विनय-पत्रिका (136-3)

उदय होता है, लेकिन जब ये जन्म लेकर गर्भ से बाहर होता है वह दैराग्य भाव समाप्त हो जाता है क्योंकि ऐसा वैराग्य दृढ़ नहीं आपात वैराग्य होता है-दूसरा वैराग्य (शव) के निकट बैठने पर होता है उसे लगता है कि इस संसार में से इसी प्रकार सबको चले जाना है, इसे श्मशान वैराग्य भी कहते हैं–

हाड़ जरै जस लाकरी, केश जरे जस घास।
सब जग जरता देखि कें, कविरा भया उदास॥

इस प्रकार ''शव के निकट'' जो वैराग्य होता है वह भी देखा जाता है कि स्थिर नहीं रहता कुछ समयोपरांत उसका प्रभाव मानव मन-मस्तिष्क से दूर हो जाता है ऐसा वैराग्य भी आपात वैराग्य की कोटि में आता है।

तीसरा वैराग्य पुराणों की कथाएँ सुनने पर कि इस वसुधा पर अनेक राजे महाराजे आये, सब इस पृथ्वी के लिए आपस में लड़ता-भिड़ते रहे, इसे मेरी मेरी कहकर अधिकार जमाते रहे लेकिन यह'' ''वसुधा काहू की न भई'' संसार की समस्त सम्पत्ति यहीं रह जाती है, जीव इसे छोड़कर असहाय की भाँति इस संसार से कूच कर जाता है। जरा-जरासी बात को लेकर दूसरे मनुष्यों की हिंसा करने वाले भोगों के संग्रह में लीन मनुष्यों को देखकर इस पृथ्वी माता को भी बड़ा आश्चर्य होता है कि ''अन्याय का सहारा लेकर धन-संग्रह एवं विभिन्न भोगों का संग्रहकर्त्ता यह नहीं जानता, कि मेरी आयु प्रायः समाप्त हो चली है, इन संग्रह किए भोगों को तू कब भोगेगा ?

हम जाने थे खाएँगें, बहुत जमी बहु-माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरि लेगया काल॥

अतः पुराणों की कथाओं के माध्यम से जीवों को यह उपदेश दिया गया है कि जीवन अनित्य, क्षण-भंगुर है। काल का भरोसा नहीं करके हमें अवने भविष्य निर्माण में लगना चाहिए। इस पृथ्वी पर बड़े-बड़े राजे-महाराजे, बड़े-बड़े वलवान, जिन्होंने काल तक को परास्त कर दिया था। अन्त में इस वसुधा को छोड़कर चले गए तो एक सामान्य प्राणी की तो क्या सामर्थ्य कि इस पृथ्वी के भोगों को भोग सके और उन्हें अपने साथ ले जा सके। राम और कृष्ण जैसे अवतार और रावण, वाणासुर से महाबली भी जब काल के ग्रास बन गए तो और कौन ऐसा है जो इस वसुधा के भोगों को भोग सके और इस पर किए गए अपने अन्यायपूर्ण संग्रहों को अपने साथ ले जा सके। पुराणों की कथाएँ इसी बात को जीवों को समझा-समझा कर कहती हैं–

बड़ी-बड़ी सेनाओं वाले, बड़े-बड़े बहुराजे।
दिन दस अपनी बजा दुन्दुभी, भए मौत के खाजे॥

इस प्रकार की कथाएँ श्रोता के मन मस्तिष्क को झकझोर डालतो हैं। उन्हे

इस पृथ्वी पर सब कुछ स्थिर और क्षणभंगुर लगने लगता है। उसके हृदय में वैराग्य जाग उठता है। लेकिन कथा सुनकर ज्यों ही अपने घर जाता है, वह वैराग्य कपूर गन्धवत्, छूमन्तर हो जाता है। पुनः यथावत् जीवन अर्थात् भोग और संग्रह का चक्र पुनः चालू हो जाता है। यह हुआ आपात वैराग्य इसे पुराण वैराग्य के नाम से जाना जाता है।

चौथा वैराग्य "रति अन्त" में उत्पन्न होता है। नारी देह के आकर्षण ने बड़े-बड़े धीर, वीर, गम्भीर पुरुषां की मति को भी अपने रूप लावन्य के पाश में जकड़ दिया तो सामान्य प्रकार के पुरुष की क्या विसात जो उसके आकर्षण से मुक्त रह सके रामचरित मानस में कागभुसण्ड गरुड जी को समझाते हैं।

श्रीमद् बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर, का आस लागि न जाहि॥

अर्थात् कंचन कामिनी का प्रभाव और आकर्षण वहुत ही प्रभावशाली होता है। इससे संसार में कोई नहीं बच सकता। अगर कोई इनसे बचता भी है तो वह है "हरिदास" जो भगवान की कृपा से ही वचा रह सकता है। सुग्रीव अपने मित्र श्रीराम के काज को भी स्त्री और भोंग विलास में भूल गया। लक्ष्मण जी जब उसे पकड़ के लाए तो भगवान से वह बोला कि "प्रभो। मेरा कोई दोष नहीं क्योंकि–

"अतिसय प्रबलदेव तव माया"।

आपकी ये माया जो कंचन और कामिनी रूपा है, यह बड़ी ही प्रबल है मेरे जैसा निर्बल भोग लोलुप वानर इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। जो आपकी इस स्त्री रूपा माया से प्रभावित हुए बिना रह सकता है वह तो आपके सदृश्य ही हो जावेगा।

विषय वस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पांवँर पशु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न वँधाया।
सो नर तुम समान रघुराया॥

उपरोक्त चौपाईयों का सार यह है कि सादा संसार काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत हो रहा है, देवता, मनुष्य और तपस्वी मुनि भी इन दोषों से नहीं बचे हैं। अर्थात् जिसके हृदय में "नारि नयन शर" नहीं लगे हों और जो घोर क्रोध रूपी रात्रि में भी जागता रहा हों, जिसने लोभ की फाँसी में अपना सिर नहीं फंसाया हो, ऐसा संसार में विरला हो कोई दिखाई देता है। अगर कोई ऐसा है भी तो वह ईश्वर

के तुल्य ही है यह सब-लिखने का मन्तव्य है कि नारि देह का आकर्षण पाकर मनुष्य उसके साथ रमण में प्रवृत्त होता है और रति कर्म के अन्त में उसे उस कर्म से महान ग्लानि होकर एक आपात वैराग्य उदय होता है कि मैं कितना विषयी हूँ जो नारि-देह रूपी नरक के कूप में गिर गया'' अब भविष्य में ऐसा नहीं होगा। अनेक प्रकार के दोषों का विचार करने लगता है कि मैंने किस अनर्थ में पग रखा क्योंकि स्त्री संग मनुष्य को कहीं का नहीं रहने देता–

जप तप नेम जलाश्रय झारी।
होय ग्रीषम सोखहि सय नारी॥

तथा उसे स्त्री सब दुःखों की खानि नजर आने लगती है–

अवगुन मूल सूल प्रद,
प्रमदा सब दुःख खानि।

उसे परम वैराग्य होता है लेकिन ''रतिअन्त'' का यह वैराग्य अस्थाई और क्षणिक, कुछ ही समय का होने के कारण ऐसा वैराग्य शास्त्रों में आपात वैराग्य के नाम से जाना जाता है, जो प्रायः सभी मनुष्यों को होता है। दृढ़ और स्थाई नहीं होने के कारण इसका कोई महत्त्व नहीं होता, यह एक सामान्य मानवीय स्वभाव होता है। यहाँ कोई ऐसा नहीं समझे कि ये वैराग्य पुरुषों में ही होता है, स्त्रियों में नहीं। यह तो सभी मनुष्य मात्र में उदय होता है। स्त्रियाँ इसकी अपवाद नहीं। गोस्वामी पाद तुलसीदास जी ने इस बात को अनेक स्थलों पर उजागर किया है अपनी विनय-पत्रिका के एक पद में उन्होंने एक उदाहरण दिया है कि युवती स्त्री सन्तान जनने के समय अत्यन्त असहाय कष्ट का अनुभव करती है (उस समय यह सोचती है कि अब पति का सेवन रति कर्म हेतु नहीं करूंगी) परन्तु प्रसवोपरांत कुछ समय पश्चात् वह मूर्खा सारी वेदना को भूलकर पुनः उसी दुःखदाई पति का सेवन करती है। उसे कुछ क्षण का वैराग्य कष्टोपरांत होता है लेकिन विषय सुख की कामना से वह पुनः विस्मृत हो जाता है। एक दूसरे उदाहरण में आप कुत्ते की वृत्ति को बतलाते हुए कहते हैं कि जैसे लालची (भोग-लोलुप) कुत्ता जहाँ जाता है, वहीं उसके सिर पर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच फिर उसी रास्ते भटकता है मूर्ख को जरा भी लज्जा नहीं आती थोड़ा भी वैराग्य नहीं होता–

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुःख उपजै।
है अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजे।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहूँ न मूढ लजै॥

विनय-पत्रिका (89)

इस प्रकार पुराण शास्त्रों में आपात वैराग्य के लक्षण लिखकर यह बात स्पष्ट की गई है कि किसी की मृत्यु के आघात से उत्पन्न दुःख से पैदा हुआ वैराग्य चिरस्थाई नहीं होता। ऐसा ही बालक "मूला" के माता-पिता के स्वर्गवासी होने से उत्पन्न जो वैराग्य था। वह दृढ़ वैराग्य नहीं था। कुछ समयोपरांत सब कुछ सामान्य हो गया। पिता की मृत्यु के बाद उनको आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा। लेकिन जैसे-तैसे यह अपना समय काटते रहे लेकिन जब अर्थ संकट अधिक हुआ तो अपने कुछ साथियों के साथ पुलिस सेदा में प्रवेश कर गये। उल्लेखनीय है कि आपका कद और शरीर सौष्ठव अच्छा था सो उन्हें इस सेवा में प्रवेश में कोई बाधा नहीं आई। लोगों का कहना है कि वहाँ भी ये अधिकांश समय ईशआराधना एवं स्वाध्याय, सत्संग में ही व्यतीत करते थे। लोगों से ज्यादा मिलना-जुलना व्यर्थ के व्यसनों में समय की बर्बादी को यह ठीक नहीं समझते थे। पुलिस की सेवा और ईश आराधना के अतिरिक्त ये कुछ नहीं करते–

हरि का भजन, पेट का धन्धा।

नहीं करे सो मूरख अन्धा॥

परिश्रम की कमाई से इनकी साधना परवान पर चढ़ गई, कभी-कभी इन्हें अपनी ड्यूटी का भी भान नहीं रहता क्योंकि श्री मद्भागवद्गीता और विष्णु सहस्त्र नाम के पाठ में यह हमेशा तल्लीन रहा करते थे। भक्ति के संस्कार इनमें बचपन से ही थे, जो इन्हें इनके पिता श्री की देन थी। भक्ति और वह भी ज्ञान वैराग्य से संयुक्त। अब इन्हें पुलिस सेवा भारस्वरूप लगने लगी क्योंकि इससे इनकी हरि सेवा और ईश आराधना में विघ्न उपस्थित होते रहते थे।

इनके कुछ सम्बन्धियों ने इनसे विवाह कर लेने का प्रस्ताव किया। लेकिन इन्होंने उनसे स्पष्ट इन्कार कर दिया। क्योंकि अब इनमें पूर्ण-विवेक वैराग्य का उदय हो चुका था। विवाह कर लेने का विचार इन्होंने अपने मन से कतई निकाल दिया, लोगों ने कहा कि, तुम्हारा घर बस जावेगा, तुम्हें रोटी बनाने वाली की आवश्यकता है। लेकिन इन्होंने उन सबकी बातों को नहीं सुना।

कुछ समय और व्यतीत हुआ पुलिस सेवा चलती रही लेकिन प्रारब्ध का विधान और पुलिस का अन्न जल शायट अब पूरा हो चुका था। आराधना और श्रीमद्भागवद्गीता का अध्ययन वहाँ भी अनवरत रूप से चलता रहा। वे अपनी स्वभावानुसार सदैव गीता के ज्ञान में मग्न रहा करते थे। उन्हें पुलिस की सेवा अपने स्वभावानुसार रुचती नहीं थी। ईश्वर को भी अपने भक्तों की रुचि का ध्यान रखना पड़ता–

राम सदां सेवक रुचि राखी।

वेद पुरान संत सब साखी॥

ऐसा संयोग बन गया कि उन्हें यह क्षात्रकर्म (सिपाही कर्म) त्यागना पड़ा और योग्य गुरु की तलाश में निकल पड़े। उन्होंने उदयपुर की पहाड़ियों में स्थित एक सिद्धपुरुष श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ली। ज्ञान के संस्कार जो बचपन से ही उनमें पड़ गये थे। श्री गुरुदेव की शरण में उस ज्ञान ने विज्ञान का रूप धारण कर लिया अर्थात् साधना के द्वारा उन्होंने परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया था। उन्होंने उपनिषद के ज्ञान का साक्षात्कार किया कि इस संसार में ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है जो ''है'' सो ''है''

ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किंन्च जगत्यां जगत।

तेन त्याक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात्–''अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप जगत है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। इस ईश्वर के सहित अर्थात् ईश्वर को याद करते हुए, त्यागपूर्वक (उसी के समर्पण करके) इसे भोगते रहो, लेकिन इसकी इच्छा नहीं करनी है क्योंकि यह धन और भोग सामग्री किसकी है ''अर्थात् किसी की नहीं''।

करीब बारह वर्ष के उपरांत ''गुरुदेव'' पुनः लघु काशी की शोभा बढ़ाने वैर पधारे, तो यहाँ के निवासियों ने पाया कि ''हीरा'' जो पूरी तरह तराश कर गुरुदेव की कृपा से और मूल्यवान हो गया था। लघु काशी की शोभा को बढ़ाने के लिए आप पूर्ण सिद्धावस्था प्राप्त कर पधारे! यहाँ के पुरवासी उनका दर्शन करके कृतार्थ हुए जन्मभूमि पूण्यवती पवित्र हो गई–

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।

अपार संवित्सुखसागरे अस्मिल्लीनं परे ब्राह्मणी यस्य चेतः॥

(स्कन्द पुराण)

अर्थात्–''जिसका चित्त इस ज्ञान और अपार आनन्द सागर रूप परब्रह्म परमात्मा में लीन हो गया हो, उस महापुरुष से उसका कुल पवित्र हो जाता है, जन्म देने बाली माता कृतार्थ हो जाती है और उसके चरण टिकने से पृथ्वी पुण्यवती पवित्र हो जाती है।''

बाबा महाराज एक महान सिद्ध पुरुष अविनाशी और समरथ रूप में लोगों के समक्ष प्रकट हुए, धन्य हैं वे पूण्यात्मा जिन्होंने वाबा के अनोखे चरित्रों को अपनी आँखों से निहारा उनके संसर्ग और सत्संग से लाभ उठाया।

अखण्ड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

❑❑❑

अध्याय 2

।।ओम श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

साधना हेतु प्रस्थान

सन् 1938, प्रातः ब्रह्ममुहूर्त की बेला शीतल मंद सुगन्धित पवन बह रहा है। सूर्यदेव के आगमन की सूचना पूर्व दिशा में उषा की लालिमा दे रही है। भरतपुर के प्राचीन मन्दिरों से शंखों एवं झालर घंटों का स्वर निकल कर मानवों को ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों के हृदयों में भी आनन्द का संचार कर रहा है। चिड़ियाएँ अटूट स्वर में चहक रही हैं, मानो उस प्रभात बेला में वे भी ईशआराधना में संलग्न हो रही हों। पुलिस लाईन के वीच एक संत्री अपने सम्पूर्ण लिवास में अपनी ड्यूटी पर तैनात है। उसके एक हाथ में बन्दूक है और दूसरे में एक पुस्तक है, जिसे वह बड़े मनोयोग से पढ़ रहा है। शस्त्र के साथ शास्त्र, वन्दूक के साथ पुस्तक का स्वाध्याय विचित्र संयोग। अचानक प्रातः भ्रमण हेतु पुलिस के उच्चाधिकारी का आगमन होता है, लेकिन संत्री अपने स्वाध्याय में इतना डूबा हुआ था कि अफसर के आगमन की भनक उसे न लग सकी।

"ओ मैन! यह क्या है? ड्यूटी टाइम में क्या स्टेडी करता है" अफसर ने बड़ी उत्तेजना के स्वर में कहकर संत्री से पूछा। संत्री का ध्यान भंग हुआ, देखा सामने सुपरिडेन्ट पुलिस (एस.पी.) एक गोरा चिट्ठा अंग्रेज खड़ा है? क्रोध के कारण जिसका चेहरा तमतमाया हुआ है। पहरेदार ने सर्वप्रथम सरकारी नियम के अनुसार उसे सेल्यूट किया। लेकिन उसने गर्जते हुए अपने पूर्व प्रश्न को पुनः दोहराते हुए कहा–

मैनः यह क्या पढ़ता है ?

"यह हमारा धर्मग्रंथ है, प्रभात की वेला में स्वाध्याय कर रहा था।"

सिपाही ने दड़ी नम्रता और निर्भीकता से उस अफसर को उत्तर दिया।

"नो, ड्यूटी टाइम में यह नहीं चलेगा। (ड्यूटी इज ड्यूटी) अंग्रेज अफसर अनेको उलूल-जलूल बातें अंग्रेजी में कह रहा था।

"यह नही चलेगा तो यह भी नहीं चलेगी, कहते हुए संत्री ने बन्दूक उसके सानने जमीन पर फेंक दी और अपनी संत्री की पोशाक को उतार फेंका, देखते-देर ते चलता वना–

ताजियेमनहरि विमुखन का संग
जाके संग कुवुधि उपजत है, परत भजन में भंग"

जहाँ कर्म के साथ धर्म नहीं वह तो कल्याणकारी कार्य नहीं उस कार्य को कभी नहीं करना चाहिए।

अंग्रेज अफसर हतप्रभ रह गया। जीवन में पहली बार ऐसे सिपाही को देखा जिसने एक पुस्तक की खातिर अपनी नौकरी को दांव पर लगा दिया।

आखिर उस पुस्तक में ऐसा क्या है जिसके नशे में अपनी ड्यूटी को अपने अफसर को तथा कानून को कुछ नहीं समझता हुआ चुनौतीपूर्वक चला गया। यह जानते हुए कि इस प्रकार बिना इजांजत के शस्त्र फेंकना तथा पुलिस की वर्दी की मन-हानि करना कानून की दृष्टि से कितना बड़ा संगीन जुर्म है।

अंग्रेज अफसर ने अपने कार्यालय में जाकर उक्त सिपाही के वारंट निकालते हुए अपने अन्य सिपाहियों को आदेश दिया कि उरो तुरन्त हिरासत में ले लिया जाये। चारों तरफ घटना विजली की गति से फैल गई। लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि 'मूला' जैसा अनुशासित सिपाही जो इतना कर्मठ एवं धर्म प्रिय था, आखिर क्यों इतना उत्तेजित हुआ। चारों और तलाशी के वाद भी उस सिपाही का कोई पता नहीं चला। वह उस ओर चला गया, जहाँ उसे जीवन का वास्तविक आनन्द लेना था।

यह संत्री और कोई नहीं हमारे गुरु देव वावा श्री मनोहरदास ही थे। उन्होंने अनुभव किया कि जिस कर्म के साय धर्म नहीं उस कर्म को तुरन्त त्यागकर धर्म साधना हेतु प्रस्थान करना चाहिए। वे उस प्रातःकाल की वेला में स्नान करके अपनी ड्यूटी पर तैनात थे और नित्य नियमानुसार गीता का स्वाध्याय भी कर रहे थे–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु माममनुस्मर युध्यच।
मध्यर्पित मनो वुद्धिर्माम वैष्यस्यसंयम्''

(आठ/सात/गीता)

श्रीमद् भागवद् गीता ने आपको यह संदेश दिया था कि समय को अमूल्य समझते हुए हर समय भगवान का स्मरण करते हुए, मनुष्य को भगवान की आज्ञानुसार कर्मों का आचरण करना चाहिए। यही गीता का सिद्धान्त है। उपर्युक्त श्लोक जिसमें भगवान अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं कि–''अर्जुन! तू सव समय निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध (कर्म) भी कर इस प्रकार मुझ में अर्पण किये हुए मन वुद्धि से युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'' (8/7)

भगवान् ने कर्म और धर्म दोनों को ही आवश्यक वतलाया है। जिस कर्म के साथ धर्म नहीं वह ''कर्मयोग'' के अन्तर्गत नहीं आता। वह थोथा कर्म है व्यर्थ का परिश्रम मात्र है। वावा महाराज ने गीता के वास्तविक तात्पर्य को हृदयांगम किया था। उन्हें देवयोग से ही सिपाही की नौकरी करनी पड़ी लेकिन–

तेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।
उसके मन की हौन दे, वृथा मचावै सोर॥

एक ब्राह्मण का सहज धर्म वेद अध्ययन ''पठन पाठन'' है पुलिस का सिपाही बनकर किसी साहब की कोठी पर संत्री का कर्म एक ब्राह्मण का सहज धर्म न होकर

परधर्म ही है, उसका धर्म तो गीता के अनुसार एक ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

(18/42 गीता)

अर्थात् (शमः) अन्तःकरण का निग्रह करना (दमः) इन्द्रियों का दमन करना (तपः) धर्म के लिए कष्ट सहना, (शौचम्) वाहर भीतर की शुद्धि (क्षान्तिः) क्षमाभाव मन इन्द्रियों और शरीर में सरलता शास्त्रविषय ज्ञान, (विज्ञानम्) परमात्मतत्व का अनुभव, तथा (आस्तिक्यम्) आस्तिक वुद्धि यह नौ गुण ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म है। वास्तविकता यह है कि प्राणी जन्म जन्मान्तरों में जो कर्म करता है उनके संस्कार उसके हृदय में स्थित (हिता) नामक नाड़ी में संचित हो जाते हैं। इन संस्कारों से ही जीवों का (स्वभाव) बनता है। स्वभावानुसार ही प्राणियों के अन्तःकरण में सत्व, रज और तम् इन तीनों गुणों की वृत्तियाँ उत्पन्न होती है। मृत्यु ये गुणों की वृत्तियाँ ही जीवों का ब्राह्मण आदि वर्णों में उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होती है।

जिसके स्वभाव में सत्वगुण की अधिकता होती है उसका जन्म ब्राह्मण दर्ण में होता है और उसके स्वाभाविक कर्म शमदमादि बतलाये गये है। जिसका स्वभाव सत्वमिश्रित रजो गुण प्रधान होता है वह क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न होता है, उसके स्वाभाविक कर्म–

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमाश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ (18/43)

अर्थात शूर वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में न भागना, दान देना और स्वाभिभाव (शासन के द्वारा लोगों को अन्यायावरण से रोककर, सदाचार में प्रवृत्त करना, दुराचारियों को दण्ड देना, समस्त प्रजा को हित सोचकर निःस्वार्थ भाद से प्रेमपूर्वक पुत्र की भाँति उसकी रक्षा और पालन पोषण करना) ये उपरोक्त क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। ये सात कर्म क्षत्रिय में होते हैं। जिसके स्वभाव में तमो मिश्रित राजगुण अधिक होता है वह वैश्य होता है, उसका स्वाभाविक कर्म-

कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभाजम्।

अर्थात् वैश्य का स्वाभाविक कर्म कृषि व्यापार एवं गौ पालन है। जिनके स्वभाव में रजोगुण के साथ तमोगुण का वाहुल्य होता है वह प्राणी शूद्र वर्ण का होता है, उसका स्वाभाविक कर्म तीनों की सेवा करना है।

परिचर्यात्मक्रं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

इस प्रकार एक ब्राह्मण का कर्म, शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमाभाव, नन एवं इन्द्रियों की सरलता, ज्ञान (शास्त्र विषयक बोध) एवं विधान अर्थात् परमात्म तत्व

का वास्तविक अनुभव होना, तथा सच्ची आस्तिकता होता है। अपने वर्ण धर्मों के विकास में पुलिस सेवा सहायक नहीं हुई। अतः उसे अपने श्रेय मार्ग में बाधक जानकर इन्होंने उसका परित्याग कर दिया। इनके इष्टग्रन्थ श्रीमद् भागवद्गीता ने इन्हें स्पष्ट निर्देश दिया है कि–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ (18/47 गीता)

अर्थात्–अच्छी तरह से अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ होता है। कारण कि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता। अतः क्षात्र कर्म को इन्होंने त्याग कर अपने वर्ण धर्म की उन्नति एवं अपनी साधना को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। अपने जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं ने इस संसार के प्रति इनके आकर्षण को सर्वथा समाप्त कर वैराग्य के बीज बोए थे। वे अब अंकुर के रूप में प्रस्फुटित होने लगे। अब ये योग्य गुरु की तलाश में इधर-उधर भटकने लगे। इन्हें ऐसे पथ प्रदर्शक की आवश्यकता थी जो इन्हें इस असार संसार को छुटकारा दिला सके। जो आवागमन के चक्र से पीछा छुड़ा सके। शास्त्र विषयक पुस्तकीय ज्ञान से युक्त अनेकों साधु-सन्यासियों से उनका सत्संग हुआ लेकिन इनकी वास्तविक जिज्ञासा को कोई शान्त न कर सका। इन्हें सच्चे तत्ववेत्ता ब्रह्मनिष्ठ गुरु की तलाश थी, जो इन्हें आत्म तत्व का बोध करा सकें। ये कुछ समय अनेक साधुओं कर्म-काण्डियों और अनेक प्रकार की तन्त्र-मन्त्रं की साधना करने वालों के संसर्ग में आते रहे। लेकिन इन्हें श्रुति सम्मत श्रेष्ठ पुरुष की खोज थी जो स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो और ब्रह्मानन्द रूपी परम सुख के दाता हों, जो अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य प्रभासम ज्ञान के दाता हों।

श्रुतियाँ इसी प्रकार के सद्गुरु की शरण जाने का उपदेश करते हुए कहती हैं–

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

(कठोपनिषद्)

"जन्म जन्मान्तर से अज्ञान निद्रा में सोये हुए मनुष्यों! उठो, परमात्मा के अनुग्रह से यह दुर्लभ मनुष्य देह मिला है, इसे पाकर एक क्षण भी प्रमाद में मत खोओ। शीघ्र सावधान हो जाओ। श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उजके उपदेश द्वारा अपने कल्याण मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो। परमात्मा का तत्व बड़ा गहन है उसके स्वरूप का ज्ञान उसकी प्राप्ति का मार्ग महापुरुषों की सहायता और परमात्मा की कृपा के बिना वैसा ही दुस्तर है, इस प्रकार छुरे की तेज धार पर चलना। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने का सरल उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बतला सकते हैं जो स्वयं इसे पार कर चुके है।"

कहते हैं कि जब शिष्य में पक्की लग्न जागती है तो गुरुदेव स्वयं प्रकट हो जाते हैं। उन्हें उदयपुर के जंगलों में स्थित प्राचीन तपोस्थली में श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज के दर्शन हुए। उनके दर्शनों से लगा कि जिस ज्ञानपुन्ज की इन्हें तलाश थी वह इन्हें मिल गया। इन्होंने श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ले ली। अब इनका नाम मूला के स्थान पर "श्री मनोहरदास" हो गया।

शास्त्रों से ज्ञान प्राप्ति हेतु जो आट अन्तरंग साधन कहे हैं उनमें से अधिकांश इनमें विद्यमान थे। गुरुदेव न एक योग्य शिष्य की प्राप्ति कर प्रसन्नतापूर्वक इन्हें योग के गूढ़तम रहस्यों को समझाया तथा साधना हेतु आवश्यक निर्देश देकर इन्हें अपने पास ही रख लिया। लगभग 12 वर्षों तक अपने गुरुदेव के समीप रहकर इन्होंने आत्म साक्षात्कार किया। अन्त में पूर्ण ब्रह्म निष्ठा को प्राप्त कर पुनः अपनी जन्मस्थली छोटी काशी वैर पधार अपनी शेष आयु के दिन इन्होंने अपनी तपोस्थली छोटी काशी में ही व्यतीत किये, अपने श्रद्धालुओं, भक्तों को ये अपनी अनोखी वाणियों द्वारा आध्यात्म विषायक ज्ञान दिया करते थे। लेकिन जब अल्पज्ञतावश जब वे नहीं समझते तो यह कह दिया करते कि "गुरु का ज्ञान न्यारा है तू समझता नहीं भला।" वास्तव में इनके गुरुदेव का जो गूढ़ ज्ञान था वह समझ से परे की चीज थी।

मोक्ष मुक्ति जो चहत हो, तजो कामना काम।
मन-इच्छा को मेटि कर, भजो निरंजन नाम॥
भजो निरंजन नाम देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तजि स्वाद, आपमें आप समाओ॥
जब छूटहि झूंठी देह, जैसे के तैसे रहिआ।
चरनदास यह ज्ञान गुरु ने हम से कहिआ॥

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरि ॐ तत्सत्

अध्याय-3

"ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः"

बाबा मनोहरदास, जीवन दर्शन

सहज साधना के सोपान

हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहरदास जी के आचरण व्यवहार एवं वाणियों को ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि उन पर निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयीशाखा के प्रधान कवियों जैसे कबीर, नानक देव, सुन्दरदास मलूकदास और दादूदयाल आदि का प्रभाव दिखाई देता है। ईश्वर को वे रंगरूप विहीन मनबुद्धि से परे, अनुभवगम्य, घट-घट का वासी मानते थे। निर्गुण धारा, भारतीय ब्रह्मज्ञान और योग साधना के साथ उनके विचार एकेश्वरवादियों से मेल खाते थे। उन्होंने अपनी गूढ़-वाणियों के माध्यम से हमें यह उपदेश किया कि हमारी उपासना पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती है, लेकिन उनके द्वारा प्राप्त होने वाला ईश्वर अलग-अलग नहीं। उन्होंने विभिन्न धर्मावलन्दियों को आपसी मतभेद भूलकर सच्चे साधकों के गुणों को अपनाने की वात समझाई–

दोहा– *दया गरीबी बन्दगी समता शील स्वभाव।*

ऐते लक्षण साधु के कहै कबीर विचार॥

कबीर साहव के इस दोहे को वह साधुता के लक्षणों एवं सच्ची मानवता के गुणों हेतु आदर्श वतलाया करते थे। उनके अनुसार प्रत्येक मानव में ये लक्षण होना धर्म एवं समाज के लिए आवश्यक है। बिना दया के न मानव-मानव कहलाने का अधिकारी है और न संत-संत ही, क्योंकि सभी दीन-दुःखी लोगों पर दया करके उनको सम्वल प्रदान करना ही सच्ची मानवता है और सच्चा धर्म भी–

जहाँ दया तहँ धरम है, जहाँ लोभ तहँ पाप।

जहाँ क्रोध तडँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

अतः गुरुदेव मानव मात्र के लिए (दया) भाव को धारण करना मानवता एवं धर्म के लिए एक अपरिहार्य गुण मानते थे। उनके जीवन वृत को देखने से हमें यह ठीक प्रकार से समझ में आता है कि उनके हृदय में मानव-मात्र ही नहीं जीवमात्र के प्रति दवा भाव कूट-कूटकर भरा था। दया के साथ गरीबी (नम्रता) बन्दगी (उपासना) और सभी वरिस्थितियों में (सम) रहना उच्चकोटि के मानव की पहचान है। मनुष्य (नाम) या "पद" से बड़ा नहीं होता। उसके अन्दर बड़प्पन के उपर्युक्त सभी गुण होना आवश्यक है। जिस व्यक्ति से जीव मात्र को सुख नहीं मिले वह समाज के लिए किसी काम का नहीं। "गरीबी" का तात्पर्य वे मनुष्य की अहंकार रहित-वृत्ति

को वतलाया करते थे क्योंकि अहंकारी के द्वारा जो दया और परोपकार आदि कर्म देखने को मिलते हैं उनके भी वह मात्र आत्म प्रदर्शन और अपने अहं की तुष्टि है। समाज सेवा के वहाने अपने सद्गुणों का प्रचार कराकर अपने को महात्मा दिखाना, समाज सेवक दिखाना ही उसका उद्देश्य होता है। अतः दया परोपकार आदि गुणों के साय नम्रता (गरीबी) होना वे बहुत आवश्यक मानते थे। संसार में नर्मता (लघुता) जिसमें जितनी मात्रा में होगी वह उतना ही महान् होगा और जिसमें इस गुण की कमी होगी या दूसरे शब्दों में जो इन्सान अहंकारी होता है, उसे समाज नफरत (घृणा) करता है। एक अन्य उदाहरण में आप कहते थे–

दो.– *सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।*

जब दुतिया का चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥

अर्थात् ''लघुता'' ही मानता का प्रतीक है। समाज और साधु समाज में वे ही लोग सम्मान के पात्र होते हैं, जिनके अन्दर अन्य गुणों के साथ-साथ अहंकार शून्यता भी होती है।

''दया, गरीबी, बन्दगी, समता शील स्वभाव''

इन छः लक्षणों में तीसरी बात और विशेष महत्त्वपूर्ण बात जिस पर हुजूर महाराज विशेष जोर दिया करते थे और आपने तो अपने जीवन में उसे पूरी तरह से अपना ही लिया था। वह बात थी वन्दगी अर्थात् ईश्वर की अखण्ड आराधना, उसके नाम का जप, उसका ध्यान, (भजन) वे हमेशा अपने मन को अर्न्तमुखी करके उस परमेश्वर के भजन ध्यान में लगाए रखते थे। उनके समकालीन लोगों (भक्तों) से मैंने जितने भी साक्षात्कार किये उन सभी ने प्रायः एक बात जरूर बतलाई कि (हुजूर बाबा हमेशा) ओंम सोहं, शिवोहं, सोहं, का प्रत्येक क्षण प्रति सांस जप में लीन रहा करते थे। उन्होंने अपने मन प्राण और बुद्धि को अपने (इष्ट) में, जो अलख पुरुष अविनाशी और घट-घट का वासी था, लगा दिया था। उन्होंने ऐसा करके स्वयं को उसी में एकाकार कर लिया था, वे स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गये थे।

उन्होंने हम सवके लिए मानो अपने कर्म द्वारा यह उपदेश किया कि कोरी धर्म- कर्म की वातें करने से, ही हम उस परम तत्व को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हमें उसके लिए अपने को सम्पूर्ण रूपेण समर्पित करना होगा। उसकी सच्चे दिल से आराधना करने और दिखावे से दूर रहने से ईश्वर जो नित्य प्राप्त है ही, हमेशा हमारे अंग-संग होता है, सच्ची लग्न से सच्चो मकि से हमारी इच्छानुसार हमें (मनचाहे रूप में) प्राप्त होता है। उन्होंने अपनी साधना के सिद्धावस्था प्राप्त कर हमें यह उपदेश किया कि अगर हम ''बन्दगी'' (भगवान का भजन) सच्ची लग्न से करें और उसमें कोई प्रकार की लापरवाही न आने दें तो ईश्वर'' हमें सहज ही प्राप्त हो जावेगा।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।

प्रेम से प्रकट होय मै जाना॥

अर्थात् ''बन्दगी'' हो और उससे प्यार किया जावे तो हमें उसकी प्राप्ति में विलम्ब नहीं अपने एक मनपसन्द पद में आप कहा करते कि–

दीनताई दया और नम्रताई दुनियाँ बीच।

बन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा॥

अर्थात्–नम्रता (दीनता) दया, के साथ अहंकार शून्यता का भाव अपने हृदय में धारण करके जो ईश्वर की वन्दगी करता है, साथ ही भूखे-प्यासों, दीन-हीनों की अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार नदद करता है। वही ईश्वर को प्यारा होता है। ईश्वर (भगवान) ऐसे पुरुष की हमेशा हर क्षण दर्शन देते रहते हैं। अर्थात् ईश्वर का वास सदैव उसके हृदय में रहता है। अहंकारी मनुष्य से ईश्वर वहुत दूर रहता है क्योंकि उसमें आत्न प्रशंसा और आत्म-प्रदर्शन भाव सर्वाधिक रहता है। चाहे संसार के समस्त गुण उसमें हों और सभी शास्त्रों को उसने कंठस्थ किया हुआ हो। अनेक प्रकार के कर्म काण्ड को विधि का ज्ञाता होने पर अगर उसमें ''दीनता'' और नम्रता के गुणों का अभाव है तो ईश्वर की दृष्टि में वह प्राणी कोई महत्त्व नहीं रखता उसकी दृष्टि से वह परम् अछूत और अस्पृश्यनीय है।

लाख ज्ञान उर में वसा, यदि कछू अभिमान।

भोजन के भण्डार में, मल की छींट समान॥

अनेक प्रकार के सद्गुणों और ज्ञान के भण्डार पुरुष में यदि लेशमात्र भी अहंकार (अभिमान) है तो वह ठीक उसी प्रकार से तजनीय है, जैसे अनेक प्रकार के पाक-शास्त्र में कुशल और चतुर रसोईयों द्वारा पवित्रता के साथ बनाया हुआ भोजन जरा सी ''मल'' की छींट से अपवित्र हो जाता है। ठीक उसी प्रकार अहंकार मनुष्य के सभी ज्ञान और गुणों का भक्षण कर जाता है। अतः साधकों के लिए ''हुजूर महाराज'' ने अपने जीवन से यह शिक्षा दी कि मनुष्य को हमेशा ''नम्रता'' धारण करके ही रहना चाहिए।

''बाबा साहब'' ने अन्य संत कवियों की भाँति छुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच की भावना, वर्ण एवं जाति भेद को समाज से दूर करने का व्यावहारिक ज्ञान दिया। वे इन सबको मानवता के विरुद्ध किया गया अपराध ही मानते थे। अपने जीवन में उन्होंने इन सब बातों को कतई स्थान नहीं दिया था। प्रत्यक्षदर्शियों एवं भक्त भोगियों द्वारा सुनाए गए संस्मरणों से यह वात स्पष्ट दिखाई देती है कि उनकी दृष्टि समतापूर्ण थी। ऊँच-नीच छुआ-छूत तथा अस्पृश्यता उनके व्यक्तिगत जीवन में कही भी दिखाई नहीं देती थी। जेसा कि मैंने संस्मरणों के वर्णनों में लिखा है कि- एक बार एक हरिजन की लड़की से उसकी डलिया में से रोटी माँग कर खाने लगे तथा एक नाली जाति की

लड़की से जो कि अपने पिता को ''बाग'' पर रोटी देने जा रही थी, एक रोटी लेकर खाने लगे। इन सभी से यही निष्कर्ष निकलता है कि आपकी दृष्टि में कोई भेदभाव नहीं था। उनका धर्म मानव धर्म था। मानव मात्र में उनकी सम दृष्टि थी। बाह्य भेदों को उन्होंने कभी भी मान्यता प्रदान नहीं की। वर्ण एवं जाति भेद से वे सर्वथा मुक्त थे। सच्चे भाव वाला इन्सान, जो सीधा सरल भाव युक्त होता उन्हें बहुत भाता। उसका बड़ा ही सम्मान करते, तथा बाहरी दिखावे वाले छली-कपटी, अहंकार, व्यक्ति से वे उदासीन रहते थे। भगवान का भी कथन है–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

सहज साधना पर जोर-

हमारे पूजनीय गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने सहज साधना का मार्ग अपनाया। उन्हें जीवन में आडम्बर पसन्द नहीं था। सरल और सादगी पूर्ण और रहनी-सहनी पर उन्होंने बल दिया। धर्म एवं समाज दोनों क्षेत्रों में व्याप्त पाखण्डों का उन्होंने संतों की तरह ही बहिष्कार किया। उन्होंने बतलाया कि ईश्वर की आराधना के लिए किसी भी बाहरी स्वांग की आवश्यकता नहीं है। बाह्य आडम्बरों तिलक छापा, तीर्थ-यात्रा एवं अन्य बाहरी आचारों को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। उनके जीवनवृत्त से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए हमें न तिलक छापे की आवश्यकता है न कपड़े रंगने की। सहज स्वाभाविक ढंग से निश्छल और सरल जीवनयापन करते हुए दया, गरीबी, बन्दगी तथा समता, शील आदि गुणों को अपने हृदय में धारण करके जो इन्सान जीव मात्र की सेवा में तत्पर रहता है। ईश्वर उसके अंग-संग साक्षात रहता है। हमारे जीवन में जितना अधिक वनावटीपन होगा जितना अधिक बाहरी आडम्बर होगा, जितनी मात्रा में आत्मप्रदर्शन का भाव होगा हम ईश्वर से उतने ही दूर होंगे। हम क्या आराधना करते हैं, हम क्या जप करते हैं हम कौन का शुभ-कार्य करते हैं, इन सवका किसी को पता नहीं लगना चाहिए। हम अपनी आध्यात्म साधना हरि भजन, या योग साधना को जितना गुप्त रखेंगे हमें उतनी ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त होगी। साधना की गोपनीयता पर ही उसकी प्रगति निर्भर है। साधना का उद्देश्य अगर प्रभु प्राप्ति है तो उसमें गोपनीयता परमावश्यक है। क्योंकि उसके प्रदर्शन से अहंकार का तुष्टीकरण ही होगा और हमारी ईश्वर से दूरी बढ़ जाएगी। ईश्वर (भगवान) हमारे घट-घट की जानन हारा है उसके लिए साधना गुप्त ही होनी चाहिए।

चौपाई– **प्रभु जानत सब विनहिं जनाएँ।**

कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

भगवान तो बिना प्रदर्शन के भी हमारे अन्तःकरण के भाद कुभावों को जानने

वाला है हमें वाहरी आडम्वरा और क्रियाओं के विस्तार को क्या आवश्यकता है। हुजूर महाराज ने हमें साधना का मार्गदर्शन करते हुए समझाया कि साधना सहज स्वाभाविक ढंग से गुप्त रूप से करनी चाहिए, तभी हमें इष्टदेव के दर्शन हो सकते हैं।

साधना का उद्देश्य यदि लोक मान्यता प्राप्त करना ही है तो उसका प्रदर्शन करना आवश्यक है। जितना हम अण्नी साधना क्रियाओं और वातों का प्रदर्शन करेंगे संसार में ज्ञानी ध्यानी और साधक के नाम से विख्यात हो जाएंगे। लेकिन इस प्रकार के व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति तीनों कालों में भी सम्भव नहीं। उसके लिए उसे साधना का गापन परम आवश्यक है। संसार में साधना का प्रदर्शन तप का प्रदर्शन, ज्ञान का प्रदर्शन करना साधकों का नहीं ठगों का काम है। जो अपनी क्रियाओं और पद्धतियों के प्रभाव से समाज में अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इस प्रकार के लोगों की अन्त में दुर्दशा, दुर्गति एवं पतन ही होता है। रामचरित मानस में कहा गया है कि–

''लोकमान्यता अनल सम,
करतप-कानन दाह''।

अर्थात् लोक मान्यता तपस्या रूपी जंगल को जलाने हेतु आग के समान होती है। अतः तपस्वियों, साधकों और भक्तों को साधान करते हुए हमारे गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री वावा मनोहरदास जी महाराज ने सहज योग युक्ति द्वारा गोपनीय साधना करके आत्म प्रदर्शन, लोक मान्यता से दूर रहने का उपदेश दिया था।

उन्होंने सम्पूर्ण विषय भोगों को त्याग कर अभिमान रहित होकर बिना किसी प्रदर्शन के अपने सहज योग का साधना को पूर्णता पर पहुँचाया था। उनके ''गुरु का ज्ञान न्यारा'' था। जो ज्ञान था वह इतना गोपनीय रखा कि भाग्यवान साधकों के अलावा कोई उसे न समझ सका न जान सका। इन पंक्तियों का लेखक उनकी महिमा का वर्णन करने में अपने आपको सर्वथा अल्पज्ञ समझकर संकोच के साथ हुजूर की महिमा का वर्णन करने में अपने आपको अधिकारी मानता है। क्योंकि जिसके चरित्र और गुणों को कोरे कागज पर लिखने का मैं दुस्साहस कर रहा हूँ। उन तक न मेरे मन की पहुँच है न वृद्धि ही की, और न मेरी यह लेखनी उनके महान व्यक्तित्व को उनकी साधना को, और न ही उनकी महिमा की लिखने की शक्ति रखतो है। मुझ से पूर्णवतीं कवियों ने भी हुजूर की महिमा का वर्णन अपने छन्दों में किया है। हमारे पूजनीय स्वर्गीय पं श्री नत्थीलाल जी (चौवे) ने अपने एक छंद में हुजूर की नहिमा कां वर्णन इस प्रकार किया है–

ओ३म् ओ३म् जपते थे, धूनी सदां रमते थे,
अलल पुरुष मूर्ती का, एक ज़वर नारा था॥

साधा था पूर्ण योग, त्यागे थे विषय भोग,

तुमने मोह-लोभ प्रदल, शत्रुओं को मारा था॥

योगी यती, जती सती, काहू को न पहुंची मती,

अलबेले गुरु का, छिपा हुआ ज्ञान न्यारा था।

बाबा मनोहरदास, वस्ती कर सूनी गये,

संत मण्डली का यहाँ चमकता सितारा था॥

इस प्रकार हमारे आराध्य गुरुदेव, प्रातः स्मरणीय श्री मनोहरदास जी ने अपने अनुभव ज्ञान द्वारा विशुद्ध मानदता को आधार बनाकर हमें सहज साधना पद्धति का व्यावहारिक ज्ञान दिया। उन्होंने साधकों को वे महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये जिससे किसी समाज और देश के का चाण के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता का और जीव मात्र का हित हो। धन्य है वे साधक भक्त और उनके अनुयायी जिन्होंने आपके बतलाए मार्ग पर चलकर सर्वजन हिटाय और सर्व जन सुखाय के, महान लक्ष्य की प्राप्ति की, तथा इस धरा धाम'' छोटो काशी वैर को गौरवान्वित किया।

हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्

□□□

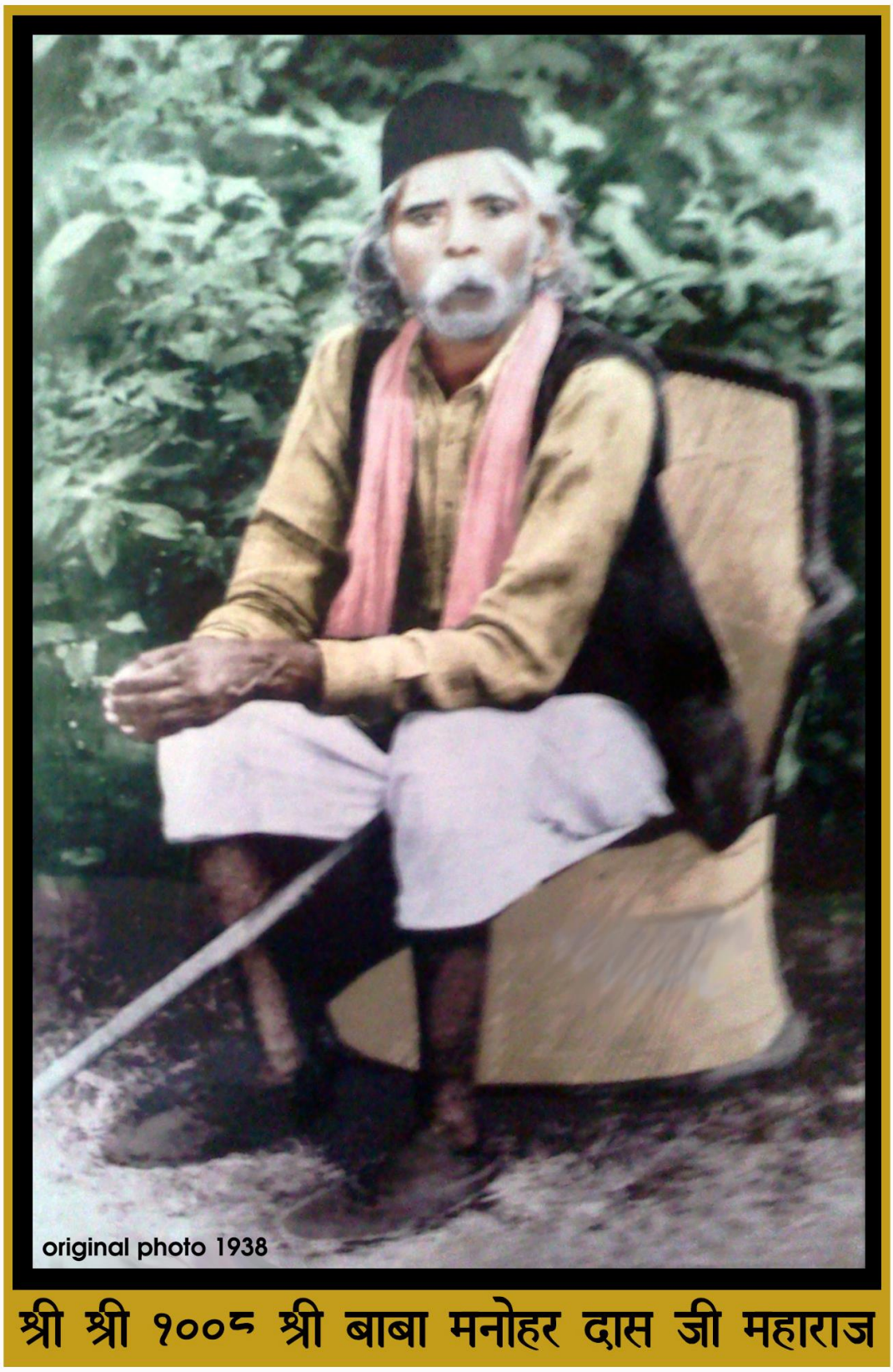

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज